दैनिक जागरण

सत्कर्म का फल अवश्य मिलता है

कांग्रेस का भविष्य

आम चुनाव के अंतिम नतीजे आने के साथ ही यह स्पष्ट हो गया कि विपक्ष की अगुआई कर रही कांग्रेस इस बार भी लोकसभा में नेता विपक्ष का पद हासिल नहीं कर सकेगी। भले ही कांग्रेस के खाते में पिछली बार से आठ सीटें अधिक दिख रही हों, लेकिन कुल मिलाकर उसका प्रदर्शन उसकी दयनीय दशा को ही बयान कर रहा है। यदि एक क्षण के लिए केरल और तमिलनाडु में सहयोगी दलों के सहारे उसके प्रदर्शन को किनारे कर दें तो उसकी हैसियत क्षेत्रीय दल जैसी ही दिखेगी। सबसे पुरानी और लंबे समय तक केंद्र में शासन करने वाली कांग्रेस की ऐसी दुर्दशा इसलिए ठीक नहीं, क्योंकि लोकतंत्र एक मजबूत विपक्ष की भी मांग करता है और आज के दिन कोई क्षेत्रीय दल इस मांग को पूरा करने में समर्थ नहीं। वह कर भी नहीं सकता, क्योंकि ऐसे दल राष्ट्रीय महत्व के मसलों पर संकीर्ण रवैया अपनाते हैं। इस पर हैरत नहीं कि एक और करारी हार के बाद कांग्रेस में बेचैनी दिख रही है और उसके कई नेता इस्तीफे की पेशकश करने में लगे हुए हैं। ऐसा होना स्वाभाविक है, लेकिन केवल इतने से बात नहीं बनने वाली कि हार के कारणों की समीक्षा होगी। सबको पता है कि समीक्षा के नाम पर लीपापोती ही होती है। कांग्रेस में तो खास तौर पर घूम-फिर कर इसी नतीजे पर पहुंचा जाता है कि पार्टी को गांधी परिवार के नेतृत्व पर पूरा भरोसा है। आखिर कौन नहीं जानता कि 2014 में पराजय के कारणों की खोज के लिए गठित एंटनी समिति की रपट आज तक बाहर नहीं आ सकी? यदि इस बार भी पिछली बार जैसा होता है तो कांग्रेस का भविष्य गंभीर खतरे में होगा।

कांग्रेस को एक और करारी हार के बाद खुद में व्यापक बदलाव के लिए कमर कसनी होगी। यह बदलाव आत्ममंथन से ही संभव होगा, न कि दरबारी संस्कृति का परिचय देने से। जरूरी केवल यह नहीं कि गांधी परिवार इस संस्कृति में रचे-बसे लोगों को किनारे कर पार्टी को ईमानदारी से आत्ममंथन करने का मौका दे, बल्कि उससे जो हासिल हो उसे स्वीकार भी करे। इससे इन्कार नहीं कि गांधी परिवार के बगैर कांग्रेस का काम नहीं चल पाता, लेकिन सच यह भी तो है कि परिवार के प्रभुत्व के चलते जनाधार वाले सक्षम नेता एक दायरे से ऊपर नहीं उठ पाते। कई बार तो उन्हें जानबूझकर उठने नहीं दिया जाता। गांधी परिवार को यह भी समझना होगा कि मजबूत विपक्ष के साथ ही उसका सकारात्मक होना आवश्यक है। बीते कुछ समय में कांग्रेस ने जैसी नकारात्मक राजनीति का परिचय दिया उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है। सबसे खराब बात यह रही कि नकारात्मक राजनीति की अगुआई खुद राहुल गांधी ने की। वह केवल चौकीदार चोर का नारा ही नहीं उछालते रहे, बल्कि प्रधानमंत्री के प्रति अभद्र भाषा का भी इस्तेमाल करते रहे। कांग्रेस की नकारात्मक राजनीति को देखते हुए आज की पीढ़ी के लिए इस पर यकीन करना कठिन है कि यह वही कांग्रेस है जिसके नेतृत्व में देश ने आजादी की लड़ाई लड़ी थी। बेहतर होगा कांग्रेस अपने समृद्ध अतीत का स्मरण कर जरूरी सबक सीखने में और देर न करे।

सपने होंगे साकार

लोकसभा चुनाव में बिहार की जनता ने एनडीए के पक्ष में सिर्फ दिल खोलकर वोट ही नहीं दिया है, बल्कि इसके साथ अपनी उम्मीदों की पोटली भी थमा दी है। जनता ने अपना सर्वश्रेष्ठ दिया है तो इस अपेक्षा के साथ कि उनके दुख दूर होंगे। निश्चित रूप से अब यह केंद्र और राज्य सरकार की जिम्मेवारी बनती है कि वह जनता की चिरलंबित अपेक्षाओं को पूरा करने की दिशा में कदम उठाए। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार लंबे अरसे से राज्य को विशेष दर्जा देने की मांग कर रहे हैं। पता नहीं, दर्जा हासिल होने से ही सबकुछ हासिल हो जाएगा, लेकिन कुछ मांगें ऐसी हैं, जिन पर तुरंत ध्यान देने की जरूरत है और वह केंद्र सरकार के प्रयास से ही संभव है। सबको पता है कि राज्य में हर साल आने वाली बाढ़ अपने साथ भले ही उपजाऊ मिट्टी नहीं लाती है, पर आफत जरूर ले आती है। इससे जानमाल और फसल के साथ आधारभूत संरचना की भी भारी तबाही होती है। राज्य का बच्चा-बच्चा इस तथ्य को जानता है कि यह तबाही नेपाल में बिना हाई डैम बनाए नहीं कम हो सकती है। यह मसला वर्षों पुराना है। केंद्र सरकार ही इस दिशा में कोई पहल कर सकती है। बिहार और खासकर इसके उत्तरी हिस्से के लोग उम्मीद करेंगे कि ताकतवर केंद्र सरकार इसके लिए पहल करे। यकीन मानिए, यह पहल भी विकास को गति देने में महती भूमिका निभाएगा। राज्य में हाल के दिनों में आधारभूत संरचना का अच्छा विकास हुआ है। सड़क और बिजली की उपलब्धता ने जीवन शैली को बदल दिया है। अबतक इन साधनों का उपयोग सुविधा के लिहाज से किया जाता रहा है, लेकिन जरूरत इस बात की है कि आधारभूत संरचना के ये साधन उत्पादन के काम में भी आ जाएं। राज्य में खनिज के नाम पर सिर्फ बालू है, लेकिन कृषि के क्षेत्र में उद्योग की अपार संभावना है। केंद्र और राज्य सरकार अगर साझा प्रयास करें तो कम से चीनी के कारखाने बड़े पैमाने पर खोले ही जा सकते हैं। अच्छी बात यह है कि कारखाने के लिए जमीन अधिग्रहण की समस्या नहीं है। पुराने कारखानों की जमीन का उपयोग कर ही नए कारखाने खोले जा सकते हैं। यह हुआ तो राज्य की वास्तविक तरक्की हो सकती है।

नए वोट बैंक के निर्माण ने किया कमाल

यशवंत देशमुख

इस चुनाव में मोदी ने दो नए वोट बैंक बनाए– एक महिलाओं का और दूसरा पहली दफा मतदान करने वालों का, जो एक नए भारत का सपना साकार करना चाहते हैं

इस जनादेश की तमाम व्याख्याएं होंगी, लेकिन यह मूलतः विपक्ष की नकारात्मकता के खिलाफ है। भारत बहुत आशावादी देश है, मगर बीते पांच साल से यहां एक तबका प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से खुन्नस के चलते निराशावादी माहौल बनाने में जुटा था। इसमें असहिष्णुता से लेकर अभिव्यक्ति की आजादी को लेकर जैसा माहौल बनाया गया उससे आम आदमी आक्रोशित होता गया। इसकी परिणति चुनाव नतीजों में हुई। लोगों ने मोदी को कर्मठता से काम करते हुए देखा। ऐसे में एक बात स्पष्ट थी कि आप निजी तौर पर भले ही मोदी को नापसंद करें, लेकिन उन पर अकर्मण्यता का आरोप नहीं लगा सकते। मोदी के राजनीतिक और वैचारिक विरोधी उन पर तरह-तरह के लांछन लगाते आए हैं, लेकिन उनके कट्टर से कट्टर विरोधी ने भी कभी उन पर भ्रष्टाचार के आरोप नहीं लगाए। मोदी के खिलाफ चाहे जो आरोप चस्पां हो जाए, लेकिन भ्रष्टाचार का लेबल नहीं लग सकता, मगर कांग्रेस ने राफेल को लेकर 'चौकीदार चोर है' का नारा गढ़कर यही गलती की। जब भी आप कोई मुकाबला जीतना चाहते हैं तो अपनी कमजोरी को ढंकते हुए विरोधी की कमजोर कड़ी को निशाना बनाते हैं, लेकिन कांग्रेस ने उल्टा किया। भ्रष्टाचार को लेकर निशाने पर रही कांग्रेस और गांधी परिवार ने अपना यही कमजोर पक्ष उजागर करके प्रतिद्वंद्वी के सबसे मजबूत पक्ष यानी ईमानदार छवि पर प्रहार किया। इसका प्रतिकूल परिणाम सामने आना ही था।

नरेंद्र मोदी हमेशा से एक राष्ट्रपति शैली वाला चुनाव चाहते थे। ऐसे में मोदी पर लगातार हमला करके विपक्ष ने उनकी यह मुराद भी पूरी कर दी। मोदी को हराने का यही तरीका था कि विपक्ष 543 सीटों पर उनसे मुकाबला करता। गठबंधन सहयोगियों को साधा जाता। तीन महीने पहले विधानसभा चुनावों में जीत हासिल करने के बाद कांग्रेस के पास महागठबंधन बनाने का सुनहरा मौका था। मध्य प्रदेश में बहुमत न मिलने पर सपा और बसपा ने उसे समर्थन दिया। कांग्रेस थोड़ा दिल बड़ा करती और उनके एक-एक सदस्य को ही वहां राज्यमंत्री का दर्जा देती तो इससे गठबंधन धर्म के लिहाज से एक सकारात्मक संदेश जाता। फिर उत्तर प्रदेश में सपा-बसपा के सामने मांग रखती कि देखिए मध्य प्रदेश में हमने आपको सहभागी बनाया और यहां आप हमें अपने गठबंधन में शामिल करिए, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। थोड़ी सी सत्ता मिलते ही कांग्रेस के तेवर बदल गए। उसमें यह भावना घर कर गई कि हम बड़े दल हैं और हमें छोटी पार्टियों की कोई जरूरत नहीं। सच्चाई यह थी कि मध्य प्रदेश में कांग्रेस हांफते-हांफते ही जीती थी और वह भी पंद्रह साल के सत्ता विरोधी रुझान के बाद। लगता है कांग्रेस ने समझ लिया कि उसने बहुत बड़ा राजनीतिक चमत्कार कर दिया। इस दौरान कांग्रेस नरेंद्र मोदी और अमित शाह को लगातार अहंकारी बताती रही। अब जरा गठबंधन के मोर्चे पर भाजपा की रणनीति से कांग्रेस के रुख की तुलना कर लीजिए। बिहार में जदयू को साथ जोड़ने के लिए भाजपा ने अपनी

अवधेश राजपूत

जीती हुई सीटों के साथ भी समझौता कर लिया। मोदी और भाजपा के खिलाफ विपक्ष के किसी भी नेता ने इतने कड़वे शब्दों का इस्तेमाल नहीं किया होगा जितना उद्धव ठाकरे और शिवसेना ने किया, फिर भी मोदी और शाह ने सभी बातों को किनारे रख उनके साथ गठजोड़ को अंतिम रूप दिया। यदि कोई सहयोगी दल इसका एक प्रतिशत भी राहुल गांधी के साथ करता तो कांग्रेस कभी उससे गठजोड़ नहीं करती। भाजपा ने अन्य दलों को ऐसे ही साधा। भाजपा में जीतने की जो इच्छा है और उसके तहत योजनाएं बनाने और उन्हें मूर्त रूप देने का जो जज्बा है उसका कोई जोड़ नहीं। नतीजों से भी यह पुष्टि हो रही है।

यह भी उल्लेखनीय है कि पूरे पांच साल तक नरेंद्र मोदी की रेटिंग कभी भी कमजोर नहीं रही। जनवरी से हम रोजाना उनकी अप्रूवल रेटिंग का आकलन कर रहे थे। बालाकोट एयर स्ट्राइक के बाद पीएम मोदी की रेटिंग 50 से चढ़कर 68 तक पहुंच गई। इसके बाद चर्चा हुई कि पीएम मोदी को इसका बहुत फायदा हुआ। फिर छह हफ्ते बाद जब इसमें कुछ गिरावट आई तो हमारी रेटिंग के आधार पर खबरें छपीं कि मोदी की रेटिंग में भारी गिरावट आई। मगर इस तथ्य को अनदेखा किया गया कि उनकी रेटिंग 50 से नीचे नहीं गई। इसकी तुलना राहुल गांधी की रेटिंग से करें जो पूरा जोर लगाने के बावजूद सात-आठ से ऊपर जाने के लिए जद्दोजहद करती रही। मगर इसकी कहीं कोई चर्चा नहीं हुई। वहीं मोदी की रेटिंग घटकर 50 पर आ जाना कुछ लोगों के लिए बड़ी खबर बनी। चुनाव में बेरोजगारी भी एक बड़ा मुद्दा था। हमने जमीन पर जब इस बारे में बात की तो लोगों ने इसे एक बड़ी समस्या तो माना, लेकिन अधिकांश लोगों ने यह भी कहा कि इसका समाधान भी मोदी ही कर सकते हैं।

यह नया भारत है। आकांक्षी भारत है। युवा मतदाताओं का भारत है। इस जनादेश ने सबसे बड़ा संदेश यही दिया है कि मोदी ने दो नए वोट बैंक बना लिए हैं-एक महिलाओं का और दूसरा पहली दफा मतदान करने वाले युवाओं का। सत्तर साल के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ है कि महिलाओं ने पुरुषों के बराबर मतदान किया। यह बहुत बड़ी बात है। महिलाओं में राजनीतिक जागरूकता के लिए उज्ज्वला योजना को तो श्रेय दिया जाता है, लेकिन इस दृष्टिकोण से शौचालय योजना की चर्चा कम होती है। यह योजना केवल साफ-सफाई के लिए नहीं, बल्कि उससे कहीं बढ़कर है। ग्रामीण भारत में महिलाओं के साथ यौन दुर्व्यवहार की सबसे अधिक घटनाएं तब होती हैं जब वे शौच के लिए बाहर निकलती हैं। ऐसे में घर में शौचालय बनना उनके लिए बड़ी राहत साबित हुआ। इसका अनुमान तब लगा था जब हम अंतरराष्ट्रीय संस्था ग्लोबस्कैन के लिए एक सर्वेक्षण कर रहे थे। इसमें शौचालय ग्रामीण महिलाओं की गरिमा और सम्मान के प्रतीक के रूप में सामने आया।

बीते पांच साल के दौरान देश में करीब आठ करोड़ नए मतदाता जुड़े जो कुल मतदाताओं का दस प्रतिशत हैं। 2014 में जब मोदी प्रधानमंत्री बने तो यह तबका स्कूल में था। मोदी ने तभी से उनसे जुड़ाव रखना शुरू किया। कभी मन की बात में परीक्षा के तनाव और दबाव से दूर रहने का मंत्र दिया या एक्जाम वॉरियर जैसी पहल की। उनकी इस मार्गदर्शक भूमिका ने भी इन नए मतदाताओं के मानस को प्रभावित किया। पहले किसी नेता ने ऐसा नहीं किया। परिणामस्वरूप इन दस प्रतिशत मतदाताओं का तकरीबन 60 फीसद मत भाजपा को मिला।

मोदी ने इस चुनाव में जाति और तमाम अन्य धारणाओं को ध्वस्त किया। इससे भाजपा अखिल भारतीय स्वरूप ग्रहण कर रही है। पिछले चुनाव में पूरब में सीमित पहुंच रखने वाली पार्टी ने इस बार पूर्वोत्तर, पश्चिम बंगाल और ओडिशा में दमदार प्रदर्शन किया। दक्षिण में कर्नाटक पर पूरी तरह काबिज होकर और तेलंगाना में कुछ पैठ बनाकर उसने केरल और तमिलनाडु में प्रवेश की जमीन भी तैयार कर ली है। अगले चुनाव में इन राज्यों में भी भाजपा को मिलने वाली कामयाबी पर किसी को हैरत नहीं होनी चाहिए।

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं सी-वोटर के संस्थापक-संपादक हैं)

response@jagran.com

जनादेश से सही सबक सीखे विपक्ष

मक्खन लाल

यह जरूरी है कि विपक्षी दल अपनी पृथक अस्मिता को खत्म करके एकजुट होकर एक नए युग की शुरुआत करें

आमतौर पर लोकसभा चुनाव के नतीजों को आश्चर्यजनक बताया जा रहा है। नतीजों को ऐसा बताए जाने पर मैं आश्चर्यचकित हो रहा हूं, क्योंकि आखिर जो बात साधारण मतदाता को दिखाई दे रही थी वह बड़े-बड़े चुनावी पंडितों की दृष्टि से कैसे ओझल रही? चुनावों के दौरान जब यह कहा जाता था कि भाजपा पहले से बेहतर प्रदर्शन करेगी तो उस पर यकीन करने वाले कम ही होते थे। जो भी हो, आम चुनावों के नतीजे कुछ बड़े सवाल खड़े कर रहे हैं जिनकी ओर हमें ध्यान देना चाहिए। 2019 के आम चुनाव को यदि हम 2014 के चुनाव के साथ जोड़ कर देखें तो हमें पता चलेगा कि कैसे इन दोनों चुनावों ने भारतीय चुनाव पटल पर स्थापित कई मान्यताओं को धराशायी कर दिया। कांग्रेस मात्र 52 सीटें पाकर एक बार फिर मुख्य विपक्षी दल के पद से वंचित रही, बल्कि 17 प्रदेशों एवं केंद्र शासित क्षेत्रों में खाता भी नहीं खोल सकी। नौ प्रदेशों जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, झारखंड, महाराष्ट्र आदि में तो कांग्रेस को मात्र एक-एक सीट से संतोष करना पड़ा। कांग्रेस के अतिरिक्त जब हम तथाकथित महागठबंधनों की तरफ देखते हैं तब स्थिति और भी दयनीय दिखती है। जहां समाजवादी पार्टी में मुलायम परिवार के भी सभी सदस्य नहीं जीत सके वहीं वहीं लालू यादव के दल को एक भी सीट नहीं मिली। हारने वालों की लिस्ट में लोकसभा में कांग्रेस के नेता मल्लिकार्जुन खड़गे के साथ वीरप्पा मोइली, सुशील कुमार शिंदे, भूपेंद्र सिंह हुड्डा, शीला दीक्षित आदि के नाम जुड़े। इनमें ज्यादातर मुख्यमंत्री रह चुके हैं। कई मायनों में यह चुनाव बहुत अनोखा रहा। पहली बार सेकुलरिज्म और कम्युनलिज्म मुद्दा नहीं बन सके। जाति और परिवारवाद की राजनीति भी मुंह के बल गिरी। क्षेत्रवाद का कोई नामलेवा नहीं रहा। हमें याद रहना चाहिए कि ये सब पिछले चुनावों के मुद्दे थे, लेकिन अब बदलते समय में इन सभी मुद्दों की जगह देश और लोगों की प्रगति, राष्ट्रवाद और विश्वपटल पर हमारी हैसियत आदि ने ले ली है। लगता नहीं कि आने वाले समय में हम चुनावों के पुराने मुद्दों और नारों पर वापस लौट सकेंगे। एक तरह से यह भारत की चुनावी राजनीति के लिए नया परिदृश्य है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि राजनीतिक दलों के साथ वे सभी जो प्रजातंत्र में भरोसा रखते हैं, अपनी रीति-नीति बदलने के लिए तैयार रहें।

स्वस्थ एवं स्थिर प्रजातंत्र के लिए न केवल एक मजबूत और देशहित में कठोर निर्णय ले सकने वाली सरकार चाहिए, बल्कि एक मजबूत विपक्ष भी चाहिए जो सरकार के अच्छे कामों में तो उसका समर्थन करे, लेकिन गलती की ओर बढ़ रहे कदमों को रोके भी। किसी भी प्रजातंत्र के लिए यह सुखद स्थिति नहीं कि नेता विपक्ष का पद इसलिए खाली रहे कि कोई विपक्षी दल संसद की कुल संख्या का दस प्रतिशत सीट नहीं जीत सका। पिछली लोकसभा में कांग्रेस के पास 44 सदस्य थे तो इस बार भी वह इतनी सीटें नहीं जीत सकी कि नेता विपक्ष का पद हासिल कर सके। अगर हम दलगत परिणामों को देखें तो राजग में छह ऐसे दल हैं जिन्हें मात्र एक-एक सीट ही मिली है और 11 का तो खाता ही नहीं खुला। कमोबेश यही स्थिति संप्रग की भी है। अन्य में जहां चार दलों को एक-एक सीट मिली है वहीं 627 दलों का खाता भी नहीं खुला। यह विचारणीय है कि देश में कुल 648 पार्टियां ऐसी हैं जिनका खाता भी नहीं खुला। अगर हमें भारतीय प्रजातंत्र को स्वस्थ और मजबूत रखना है तो समय आ गया है कि हम कुछ बड़े और कठोर कदम उठाएं। कोई तो नियम-कानून ऐसा बनना चाहिए जिससे बेकार के राजनितिक दलों से मुक्ति मिल सके। आज जब जाति, पंथ, क्षेत्र, भाषा और परिवार की राजनीति हाशिये पर जा रही है तो राजनीतिक दलों को स्वस्थ प्रजातंत्र देने के लिए निजी स्वार्थों से ऊपर उठना चाहिए।

गांधी जी कहा करते थे कि बड़े और शुभ काम की शुरुआत बड़ों को करनी चाहिए। समय आ गया है कि कांग्रेस 30 जनवरी 1948 को कार्यसमिति में रखे गए प्रस्ताव पर विचार करे। इस प्रस्ताव में गांधी जी ने कहा था कि कांग्रेस अपने आप को राजनीतिक पार्टी के स्थान पर एक सामाजिक आंदोलन के रूप में स्थापित करे। उनका आग्रह था कि अब इसका नाम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस न होकर लोक सेवक संघ होना चाहिए। कांग्रेस को यह समझना पड़ेगा कि आज के राजनितिक परिदृश्य में उसकी प्रासंगिकता की लगभग खत्म होती जा रही है। शीर्ष पदों पर नेहरू-गांधी परिवार का अधिकार कांग्रेस के ऊपर एक बोझ बनकर रह गया है। यदि कांग्रेस अपने आपको गांधी जी का अनुसरण करने में असमर्थ पाती है तो भी एक दूसरा रास्ता यह है कि वह अपने को नेहरू-गांधी परिवार से अलग करे ताकि पार्टी मुक्त हवा में सांस ले सके और बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप ढल सके। कांग्रेस में नेहरू-गांधी परिवार से इतर ऐसे सक्षम लोग हैं जो पार्टी को नई दिशा, गति और नया कलेवर दे सकते हैं। कांग्रेस को इंग्लैंड की परंपरा से सीखना चाहिए। वहां पर कोई भी नेता जब अपने दल को आगे ले जाने में अक्षम होता है तो वह खुद ही पार्टी छोड़ कर अलग हट जाता है।

अब जब वंशवाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद आदि के सहारे चलने वाले दल हाशिये पर धकेले जा रहे हैं तब ऐसी सभी पार्टियों को संचालित करने वालों को भी भविष्य के बारे में शांत मन से सोचना चाहिए। कभी शून्य तो कभी दो-चार सीटें पाकर उन्हें तो संतोष हो सकता है, लेकिन इससे न तो प्रजातंत्र को कोई फायदा होगा न ही लोगों को। ममता बनर्जी को यह सोचना पड़ेगा कि उनके द्वारा शासित पश्चिम बंगाल सबका है, न कि उनकी व्यक्तिगत जागीर। वंशवाद, जातिवाद और क्षेत्रवाद की राजनीति करने वालों को चाहिए कि वे सब एकजुट होकर अपने आप को एक राष्ट्रीय दल के रूप में विकसित करें। जब तक वे ऐसा नहीं करेंगे तब तक न केवल गलतफहमी के शिकार रहेंगे, बल्कि आत्ममुग्ध भी। चंद्रबाबू नायडू इसके सटीक उदाहरण हैं। पिछले छह महीनों में विपक्ष का कोई ऐसा नेता नहीं बचा जिससे वह न मिले हों। उनकी कवायद यही बता रही थी कि वह मोदी के खिलाफ संयुक्त विपक्षी नेता के रूप में उभरने की कोशिश कर रहे हैं। लोकसभा चुनावों के जरिये राष्ट्रीय फलक पर उभरने की बात तो दूर रही, विधानसभा चुनावों में भी उन्हें बुरी पराजय का सामना करना पड़ा। मायावती, अखिलेश यादव और ममता के प्रधानमंत्री बनने के सपने भी इसी तरह ध्वस्त हो गए। एक अच्छे और स्वस्थ प्रजातंत्र के लिए यह आवश्यक है कि विपक्षी दल अपनी छोटी-छोटी दुकानों को बंद कर एकजुट होकर अपनी पृथक आस्मिता को खत्म कर एक नए युग की शुरुआत करें।

(लेखक इंस्टीट्यूट ऑफ हेरिटेज रिसर्च एंड मैनेजमेंट, दिल्ली के संस्थापक हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

जिंदगी का सच

हम सब सोचते हैं कि यदि अवसर मिलता तो एक बढ़िया और नेक काम करते, लेकिन हमारी बढ़िया या नेक काम करने की इच्छा अधूरी ही रहती है, क्योंकि अक्सर जब हम जिंदगी के बुरे दौर से गुजरते हैं, तब उससे निकलने और जब अच्छे दौर में होते हैं, तब उस स्थिति को बरकरार रखने में जिंदगी बिता देते हैं। जीवन में लगातार संघर्ष चलता रहता है। इस संघर्ष में जीत अक्सर मन की इच्छाओं की ही होती है। इसका कारण यह है कि इच्छाओं की मांगें पूरी करने में मनुष्य को तुरंत आनंद मिलता है। इसके विपरीत आदर्श को जीने या आदर्श की अपेक्षाओं को पूरा करने में मनुष्य को शुरुआती दौर में अपने सुख का बलिदान करना होता है। इसलिए लोग सामान्यतया ऐसा करने से बचते हैं। अगर यही स्थिति लंबे समय तक बनी रहे और आदर्श की अपेक्षाओं को दबाया जाता रहे तो धीरे-धीरे आदर्श की उड़ान समाप्त होने लगती है।

आपने भी अपने जीवन में कई बार इन अच्छाइयों का परिचय दिया होगा। उस समय आपकी मनोदशा कैसी थी और उस मनोदशा का आपके स्वास्थ्य और विचारों पर क्या प्रभाव पड़ा था? निश्चित ही आपका उत्तर सकारात्मक होगा, क्योंकि आप या तो इस बात पर सिर धुन सकते हैं कि गुलाब में कांटे हैं या इस पर खुश हो सकते हैं कि कांटों से भी गुलाब खिलते हैं। जब भी हम ईमानदारी से अपने कर्तव्य का पालन करते हैं, किसी की मदद करते हैं अथवा कोई अच्छा कार्य करते हैं तो उससे अपने भीतर हम अपार संतोष महसूस करते हैं। तब वही भाव हमारे चेहरे और विचारों में भी झलकने लगता है। इससे हमारे पूरे व्यक्तित्व में एक सकारात्मक परिवर्तन होता है। संतुष्टि और आनंद की अवस्था में व्यक्ति तनावमुक्त रहता है और इसलिए स्वस्थ रहता है। यह अवस्था मनुष्य के अच्छे स्वास्थ्य के साथ-साथ एक सफल एवं सार्थक जीवन की परिचायक है। हम हमारी आस्था या भगवान के प्रति निष्ठा को सस्ता न बनने दें। हमें अपना हर काम इस तरह करना चाहिए, जैसे हम सौ साल तक जीएंगे, पर ईश्वर से रोजाना प्रार्थना ऐसे करनी चाहिए, जैसे कल हमारी जिंदगी का आखिरी दिन हो। जब हम ईश्वर के प्रति इतने पवित्र एवं परोपकारी बनकर प्रस्तुत होंगे तभी जीवन सार्थक बनेगा।

ललित गर्ग

चुनाव की लंबी होती प्रक्रिया

देवेंद्रराज सुथार

चुनाव कार्यक्रम की घोषणा के साथ ही पूरे देश में आदर्श आचार संहिता लागू हो जाती है जिसके कारण विकास के समस्त कामकाज ठप हो जाते हैं

गत दिनों बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने लोकसभा के सातवें और अंतिम चरण की मतदान प्रक्रिया में भाग लेने के बाद चुनाव की लंबी प्रक्रिया पर अपनी असहमति व्यक्त करते हुए सर्वदलीय बैठक में इसका समाधान खोजने की हिमायत की। इसी के साथ देश में लोकसभा और विधानसभा के चुनाव कई चरणों में कराए जाने से लंबी होती चुनाव प्रक्रिया को लेकर एक नई बहस छिड़ गई है।

गौरतलब है कि जैसे-जैसे लोकतंत्र विकसित होने की दिशा में आगे बढ़ रहा है, वैसे-वैसे चुनाव की प्रक्रिया भी लंबी होती जा रही है। 1951-52 में भारत का पहला ऐतिहासिक आम चुनाव 25 अक्टूबर, 1951 से 21 फरवरी, 1952 तक पूरा होने में लगभग चार महीनों का समय लगा था। हालांकि इसके बाद चुनाव कम समय में संपन्न होने लगे थे। 1962 से 1989 के बीच 4 से 10 दिनों के बीच सारे क्षेत्रों में मतदान हो जाया करते थे। 1980 में 4 दिवसीय लोकसभा मतदान देश का सबसे छोटा चुनाव था, लेकिन 2004 में 21 दिन, 2009 में 28 दिन, 2014 में 36 दिन और 2019 में 39 दिन तक चले लोकसभा चुनाव ने उस क्रम को भंग कर पुनः चुनाव प्रक्रिया को लंबा बना दिया। लंबी होती चुनाव प्रक्रिया को लेकर कई कारण भी सामने आते हैं। एक तो समय के साथ मतदाताओं की संख्या में वृद्धि हो रही है। जहां 2004 में 670 मिलियन मतदाता थे तो इस बार 900 मिलियन मतदाता थे। दूसरा कारण चुनावी मशीनरी, खासकर सुरक्षा बलों की तैनाती में अधिक समय की दरकार होती है। जिस कारण चुनाव प्रक्रिया में समय लगता है।

इस तरह की लंबी चुनावी प्रक्रिया से कुछ लोग लाभान्वित होते हैं और कुछ को नुकसान भी होता है। यही अब नियति बन गई है। जिनका चुनाव शुरू में ही हो जाता है, उनके लिए ज्यादा समस्या नहीं है, लेकिन जिन उम्मीदवारों को बाद के चरणों में मतदान का सामना करना पड़ता है, उन्हें काफी कठिनाई होती है। एक तो उन्हें लंबे समय तक प्रचार करना पड़ता है। जिसके कारण उनका खर्च काफी बढ़ जाता है। इसके अलावा उन्हें चिलचिलाती गर्मी का सामना भी करना पड़ता है। सुरक्षा बलों को भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने और आने में काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है।

चुनाव कार्यक्रम की घोषणा के साथ ही पूरे देश में आदर्श आचार संहिता लागू हो जाती है। जिसके कारण विकास के समस्त कामकाज ठप हो जाते हैं। वहीं कई चरणों में होने वाले चुनावों के मध्य होने वाली हिंसा की घटनाएं लोकतंत्र को शर्मसार करती नजर आती हैं। इस बार पश्चिम बंगाल में हुई हिंसा इसका ताजा उदाहरण है। इसलिए इस तरह की लंबी चुनावी प्रक्रिया से बचा जाना चाहिए। आवश्यकता है निर्वाचन आयोग चुनाव की लंबी प्रक्रिया को संक्षिप्त करने के लिए समाधान खोजे। विचारणीय है कि जब इंडोनेशिया और ब्राजील जैसे विशाल आबादी वाले देश एक ही दिन में अपना चुनाव पूरा कर सकते हैं तो भारत अपनी दुर्जेय चुनाव मशीनरी के साथ चुनावी प्रक्रिया को छोटा क्यों नहीं कर सकता है।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

समय के साथ जगरूक हुए मतदाता

मोदी मैजिक का रहस्य शीर्षक से लिखे अपने लेख में डॉ. एके वर्मा ने मोदी नेतृत्व में भाजपा को एक बार फिर प्रचंड बहुमत मिलने के कुछ कारणों का वर्णन किया है। लोकतंत्र में जनता सर्वोपरि होती है, इसके मन की बात को समझना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन होता है। जातिवाद, राष्ट्रवाद, धर्म संप्रदाय के नाम पर बांटने वालों की ओछी और संकीर्ण राजनीति को देश का आमजन अच्छी तरह जान चुका है, अब लोग राजनीतिक तौर पर जागरूक हो चुके हैं। इस बार के लोकसभा चुनाव के दौरान पश्चिम बंगाल में हिंसा भी खूब हुई और ईवीएम पर भी खूब सवाल खड़े किए गए। इसके पीछे क्या हकीकत है, यह समझ से परे है, लेकिन फिर भी भाजपा को प्रचंड बहुमत मिलना यह दर्शाता है कि देश ने एक बार फिर मोदी पर भरोसा जताया है। कुछ बुद्धिजीवियों ने मोदी को मिली प्रचंड जीत के बाद माना है कि मोदी, इंदिरा गांधी के बराबर जीत के मामले में पहुंच गए हैं, लेकिन एक बात यह नहीं भूलनी चाहिए कि इंदिरा गांधी के और मोदी के समय में देश की राजनीति में बहुत अंतर आ चुका है। अंत में मैं कहना चाहूंगा कि मोदी सरकार को इंदिरा गांधी की तरह गलत नीतियों की राह पर चलने से परहेज करना होगा, क्योंकि इतिहास की गवाह है कि लोकतंत्र में जो सत्ताधारी गलत नीतियों की राह चला है, उसे अगले चुनाव में लोगों ने सता से हटाने में देरी नहीं की है।

राजेश चौहान, जालंधर

अब वादों को निभाने का वक्त

लोकसभा चुनाव के नतीजे आ चुके हैं और इन नतीजों को देखकर यह साफ तौर पर कहा जा सकता है कि मोदी लहर आज भी जनता के बीच कायम है। नरेंद्र मोदी की नीतियां, उनका जमीनी स्तर पर काम करने का तरीका ही है, जिसके बल पर उन्होंने अपना ही रिकॉर्ड तोड़ दिया। इस चुनाव में प्रचंड जीत हासिल करने के बाद भाजपा ने अपने घोषणा पत्र में हर तबके को ध्यान में रखते हुए जो वादे किए हैं उसे पूरा करने का वक्त आ गया है। खासतौर पर महिलाओं के लिए उनके समान अधिकार, आरक्षण और सुरक्षा संबंधी जो भी बातें कही गई हैं उसको पूरा करना होगा। हालांकि पिछले शासनकाल में बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ जैसी मुहिम काफी हद तक सफल रही फिर भी महिलाओं और बेटियों की स्थिति अभी भी बेहतर नहीं कही जा सकती है। विपक्ष बेरोजगारी का मुद्दा बार-बार उठाता रहा है, फिर भी देश के लाखों युवाओं ने भाजपा पर जो विश्वास जताया है इन सब बातों को मद्देनजर रखते हुए सरकार को काम करना होगा।

आशिकी पटेल, नई दिल्ली

सांसद समझें जिम्मेदारी

भाजपा के विजयी सांसदों को यह समझ लेना होगा कि जनता ने उन्हें मौका दिया है तो उन्हें भी जनता की उम्मीदों पर खरा उतरना होगा। सभी को यह पता है कि आज इतनी बड़ी सफलता सिर्फ और सिर्फ मोदी के काम और नाम की वजह से मिली है। अगर सांसद काम नहीं करेंगे तो मोदी का नाम खराब होगा।

प्रदीप कुमार तिवारी, ग्रेटर नोएडा

मोदी सरकार से अपेक्षाएं

देशवासियों ने एक बार फिर मोदी को दिल्ली दरबार सौंपा है। महागठबंधन जिसमें हर कोई पीएम का दावेदार और कांग्रेस में अपरिपक्व नेतृत्व ये दो ऐसे कठिन मुद्दे रहे मतदाताओं के सामने कि उसे बहुत कुछ सोचना पड़ गया। काम करना और परिणाम प्राप्त करने के लिए जी जान से जुट जाना ये मोदी सरकार में ही मुमकिन लगा। इसीलिए जनता ने देश एक मजबूत पार्टी की सरकार को सौंपा है। मोदी सरकार ने हर क्षेत्र में बेहतर प्रदर्शन किया है और उम्मीद है कि वो देश और देशवासियों की बेहतरी के लिए और बेहतर काम करेगी।

mahesh_nenava@yahoo.com

नतीजे सबके लिए सबक

भारत की राजनीति हर 20-25 साल में बदलती रही है। अब राजनीति की दिशा जातिवाद और परिवारवाद के बोझ से ऊपर उठ रही है। जो लोग परिवार और जाति को ही राजनीति समझते हैं उनको अपने आपको बदलना होगा। कांग्रेस को समझना होगा कि उनके नेतृत्व में जनता बदलाव चाहती है, साथ ही उनको समझना होगा कि राष्ट्रवाद के मुद्दे देश के होते हैं किसी दल के नहीं। यह चुनाव सबके लिए एक सबक लेकर आया है। जो अभी नहीं बदला उसे देश की जनता बदल देगी।

ऋषि भारद्वाज, नोएडा

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं न हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय ा ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।